फिलिस्तीन को अकेला मत पड़ने दीजिए

संजय कुंदन

अमेरिकी चुनाव की सरगर्मियां अब भी थमी नहीं हैं। आकलन और विश्लेषणों का दौर जारी है। चुनाव परिणामों से कोई निराश है, तो किसी को बदलाव की उम्मीद है। उधर फिलिस्तीनियों में किसी भी तरह की आशा बंधती नज़र नहीं आ रही है। यह अलग बात है कि अपने-अपने चुनाव प्रचार में डॉनल्ड ट्रंप और कमला हैरिस, दोनों ही फिलिस्तीन को लेकर सकारात्मक बातें कर रहे थे। शुरू से ख़ुद को इज़रायल का समर्थक बताने वाली कमला हैरिस ने इस बार चुनाव प्रचार में कहा कि ग़ज़ा के हालात से हम मुंह नहीं मोड़ सकते। वो सुरक्षित इज़रायल के साथ-साथ एक आज़ाद फिलिस्तीन की बात कर रही थीं। ट्रंप पिछले कुछ दिनों से ग़ज़ा में इज़रायल के हमले के तरीक़े की निंदा करते रहे हैं। चुनाव प्रचार के क्रम में उन्होंने यहां तक कहा कि अगर वह राष्ट्रपति होते तो इज़रायल-ग़ज़ा युद्ध होता ही नहीं, मगर उन्होंने स्पष्ट नहीं किया कि वह युद्ध कैसे रोकेंगे।

बहरहाल अब जबकि ट्रंप जीत गए हैं, यह देखने वाली बात होगी कि वह अपने शब्दों पर कितना क़ायम रहते हैं और ग़ज़ा के लिए क्या करते हैं। वैसे ग़ज़ा में पहले जैसी ही निराशा-हताशा है। वहां के लोगों को लगता है कि चुनाव में वादा करना और वास्तव में उसे ज़मीन पर उतारना अलग-अलग बातें हैं। इस मामले में ज्यादातर फिलिस्तीनी ट्रंप और हैरिस को एक ही सिक्के के दो पहलू मानते हैं। ट्रंप की बातें उन्हें आश्वस्त नहीं कर रहीं। वे यह नहीं भूले हैं कि ट्रंप ने ही यरूशलम को इज़रायल की राजधानी क़रार दिया था और अमेरिका के दूतावास को तेल अवीव से वहां शिफ्ट करा दिया था। यह अकारण नहीं है कि ट्रंप की जीत पर इज़रायल में ज़बरदस्त जश्न मनाया गया।

कमला हैरिस चाहे जो भी कहती रही हों, पर बाइडन प्रशासन ने इज़रायल को अपना समर्थन बरक़रार रखा। ग़ज़ा की तबाही जारी रही। एक अनुमान के मुताबिक अब तक ग़ज़ा में एक लाख से भी ज्यादा लोग मारे जा चुके हैं। यह अलग बात है कि पश्चिम का मीडिया इस संख्या को काफ़ी कम करके बता रहा है। इज़रायल की बमबारी में बड़ी संख्या में महिलाएं और बच्चों ने जान गंवाई है। संयुक्त राष्ट्र का कहना है कि ग़ज़ा में बच्चे उस जंग की भारी क़ीमत चुका रहे हैं, जिसे शुरू करने के लिए वे ज़िम्मेवार नहीं रहे हैं। बच्चों के लिए काम करने वाली संयुक्त राष्ट्र की एजेंसी का कहना है कि यहां रहने वाले तक़रीबन दस लाख बच्चों की मानसिक सेहत पर गहरा असर पड़ा है और उनकी देखभाल करना ज़रूरी है। वहीं ग़ज़ा के स्वास्थ्य मंत्रालय ने कुछ समय पहले कहा था कि इस संघर्ष में अब तक 14,000 से ज्यादा बच्चे मारे जा चुके हैं। पर इन सबका दुनिया के उन शक्तिशाली देशों पर कोई असर नहीं पड़ रहा, जो आए दिन लोकतंत्र और मानवाधिकार की दुहाई देते रहते हैं। उन्होंने तो ग़ज़ा पर अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं के निर्देशों तक को ठेंगे पर रखा है।

ग़ौरतलब है कि जुलाई 2024 में अंतरराष्ट्रीय न्यायालय ने कहा कि क़ब्ज़े वाले फिलिस्तीनी क्षेत्र (ओपीटी) में इज़रायल की निरंतर उपस्थिति ग़ैरक़ानूनी है। न्यायालय ने ज़ोर देकर कहा कि इज़रायल को वहां से हट जाना चाहिए, नई बस्तियों के निर्माण को तुरंत रोकना चाहिए और ओपीटी से सभी बसने वालों को निकालना चाहिए। संयुक्त राष्ट्र के विभिन्न अधिकारियों और जांच निकायों ने पहले भी यह राय ज़ाहिर की है कि फिलिस्तीनी क्षेत्र पर इज़रायल का क़ब्ज़ा अवैध है और इसे युद्ध अपराध माना जाना चाहिए। पर विश्व की प्रमुख शक्तियां इसे नज़रअंदाज करती रहीं और चुपचाप तमाशा देख रही हैं।

आज फिलिस्तीन अकेला पड़ता जा रहा है। यह भी कैसी विडंबना है कि उसके लिए हमेशा बोलने वाले अरब मुल्क भी उसके लिए कोई सक्रिय भूमिका नहीं निभा रहे। इज़रायल की आलोचना या क़तर और मिस्र की सरकारों की ओर से इस

विवाद में मध्यस्थ की भूमिका अदा करने की पेशकश के अलावा किसी ने भी खुलकर फिलस्तीनियों का साथ नहीं दिया है। किसी भी अरब देश ने इज़रायल के साथ संबंध नहीं तोड़े या कोई ऐसा क़दम नहीं उठाया, जिससे उस पर कूटनीतिक या आर्थिक दबाव बढ़ता या इस जंग को रोकने में मदद मिलती। वे देश फिलिस्तीनियों के समर्थन और उनसे एकजुटता की बात तो करते हैं और ऐसा नहीं कि उनकी भावनाएं सच्ची नहीं हैं, लेकिन वे अपने राष्ट्रीय हितों को देखकर ठिठक जा रहे हैं। अरब देशों की जनता के दिल में ग़ज़ा के तंगहाल लोगों के लिए बहुत हमदर्दी है और वे चाहते हैं कि उनकी सरकारें कुछ ठोस क़दम उठाएं। ग़ज़ा में इज़रायल द्वारा किए जा रहे नरसंहार के ख़िलाफ़ अरब देशों में सड़कों पर लगातार प्रदर्शन हुए लेकिन इसका बहुत असर देखने को नहीं मिला।

दरअसल 2010 के अरब स्प्रिंग ने हालात को पूरी तरह बदल कर रख दिया है। बहुत से देश अब भी गृह युद्ध में फँसे हुए हैं, जैसे यमन, सीरिया, इराक और सूडान। लीबिया कमज़ोर हो गया है, मिस्र आर्थिक अस्थिरता में फंसा हुआ है। 'अरब स्प्रिंग' के बाद से क्षेत्र के बहुत से देश की सड़कें ऐसी गतिविधियों के लिए बंद कर दी गई हैं, जहाँ सरकारों ने कभी फिलस्तानियों के लिए आवाज़ उठाने की इजाज़त दी थी। अरब की सरकारों को अब डर है कि कहीं विरोध प्रदर्शन का रुख उनकी तरफ़ ही न मुड़ जाए। यही नहीं इन देशों को अपने यहां इस्लामी चरमपंथ के उभार का डर सता रहा है। उनमें ईरान का भी ख़ौफ़ है। हमास और हिज़्बुल्लाह के ईरान के साथ संबंध अरब देशों में शक पैदा करते हैं, इसलिए खाड़ी के देशों में ईरान को इज़रायल से बड़ा ख़तरा माना जाता है। असल में बहुत सी अरब सरकारें उस इज़राइली-अमेरिकी नैरेटिव में फंस गई हैं कि फिलिस्तीनियों की आड़ में ईरान अपना प्रभाव बढ़ा रहा है।

साफ़ है कि फिलिस्तीन का मामला काफ़ी जटिल हो गया है। लेकिन इस मसले का हल निकले बिना मध्यपूर्व ही नहीं, पूरी दुनिया में शांति नहीं हो सकती। यह महज एक राजनीतिक नहीं, मानवीय मुद्दा है, जिस पर चुप्पी हमारे सभ्य होने पर ही एक सवाल है। इस मसले को सुलझाने के लिए लंबे समय से 'दो राज्य समाधान' की बात चलती रही है। इसका मतलब यह है कि इजरायल और फिलीस्तीन दो अलग संप्रभु राष्ट्र रहें। इज़रायल उस क्षेत्र को वापस कर दे, जो उसने 1967 में फिलिस्तीनी भूमि पर क़ब्ज़ा करने से पहले हड़पा था। लंबे समय से अमेरिका और उसके समर्थक 'दो राज्य समाधान' की बात करते रहे हैं। उसके लिए कोशिशें भी हुईं लेकिन इज़रायल इसके लिए तैयार नहीं हुआ। फिलिस्तीनियों में भी इसे लेकर अलग-अलग मत रहा है। एक समय फिलिस्तीनियों का एक हिस्सा भी इसके पक्ष में था। लेकिन अब धीरे-धीरे ज्यादातर फिलस्तीनी 'एक राज्य समाधान' की बात कर रहे हैं। कई सर्वेक्षणों में अब 'एक राज्य समाधान' के प्रति उनका समर्थन बढ़ता दिखा है। एक राज्य समाधान के समर्थक कहते हैं कि उन्हें 1967 से पहले के इज़रायल सहित पूरा फ़िलिस्तीन वापस चाहिए। जॉर्डन नदी से भूमध्य सागर तक फैला एकल, लोकतांत्रिक, बहु-धर्म वाला राज्य, जिसमें फिलिस्तीनी, ईसाई और यहूदी एक बार फिर साथ-साथ रह सकें, जैसा कि वे इज़रायल राज्य के निर्माण से पहले ऐतिहासिक फिलिस्तीन के क्षेत्र में रहते थे। लेकिन इज़रायल को यह मंज़ूर नहीं है। वह हमेशा एक बहुसंख्यक यहूदी राज्य बने रहना चाहता है।

इज़रायल ने आज तक हर शांति प्रक्रिया को धता बताने में कोई कोर-कसर नहीं बाक़ी रखी है और उसे लगता है कि वह जो चाहे करेगा, क्योंकि वह अमेरिका और उसके साथियों का दुलारा है। अमेरिका और उसके साथियों की इज़रायल के लिए कमज़ोरी की वजहें साफ़ है। इज़रायल अरब में उनकी पुलिस चौकी की तरह काम करता है। पूर्व औपनिवेशिक ताक़तों ने मध्यपूर्व के संसाधनों के दोहन और इसके लिए उस क्षेत्र के मुल्कों को काबू में रखने के लिए ही वहाँ इज़रायल को खड़ा किया। इसलिए इज़रायल को हर तरह की सैन्य सहायता उपलब्ध कराई जाती है, उसके नखरे बर्दाश्त किए जाते हैं। लेकिन उसे इस तरह खुली छूट देते रहना ख़तरनाक भी हो सकता है। यह बात अमेरिकी जनता का एक वर्ग समझता है। इसलिए ग़ज़ा पर इज़राइली हमले का अमेरिका के भीतर भी विरोध होता रहा है। इसमें कोई दो मत नहीं कि ट्रंप इस समस्या की लंबे समय तक अनदेखी नहीं कर पाएंगे।

अभी यह ज़रूरी है कि अंतरराष्ट्रीय समुदाय लगातार आवाज़ उठाए। उसे युद्ध विराम, ज़रूरतमंदों को मानवीय सहायता उपलब्ध कराने तथा राजनीतिक प्रक्रिया फिर से आरंभ करने के लिए दबाव बनाना चाहिए। फिलिस्तीन के लोगों को यह अहसास कराना होगा कि वे अकेले नहीं हैं।